
प्रवचन नं. ६९ गाथा-१४ दिनाङ्क २६-०८-१९७८ शनिवार
श्रावण कृष्ण ८, वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्रीसमयसार, गाथा १४ टीका चलती है। क्या चला? यह आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त गुण हैं, उस गुणी के गुण का भेद करना, वह तो विकल्प है। सम्यग्दर्शन होता है, प्रथम में प्रथम (सम्यग्दर्शन होता है) तो वह गुणी, गुण (गुणी के) भेद का विकल्प भी छोड़कर, एक स्वभाव त्रिकाली ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन

होता है। आहाहा! विशेष गुण के भेद का लक्ष्य भी छोड़ना — ऐसा कहते हैं। आहाहा! सामान्य जो ज्ञायक एकरूप स्वभाव है, विशेष सर्व विलय हो गये हैं। आहाहा! पर्याय की विशेषता तो लक्ष्य में (से) छोड़ना; राग का-विकल्प का पक्ष तो छोड़ना, वह तो स्थूल बात (है) परन्तु यहाँ गुण-गुणी का भेदरूप विशेष का लक्ष्य भी छोड़ना। अलिंगग्रहण में ऐसा आया है — अर्थावबोधरूप गुण विशेष से नहीं आलिंगित — ऐसा एक द्रव्यस्वभाव है। आहाहा! अर्थावबोधरूप गुण-विशेष को आलिंगन नहीं करता, उसे स्पर्श नहीं करता, उसे नहीं छूता। आहाहा! ऐसा एक द्रव्यस्वभाव है, वह आत्मा है। आहाहा!

अन्तर एकस्वभावरूप जो आत्मद्रव्य है, गुण-गुणी के भेद से भी भिन्न (आत्मद्रव्य है)। आहाहा! अभी तो ऐसा (कहते) हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय होता है। अरे प्रभु! यह व्यवहार तो अनन्त बार किया नौवें ग्रैवेयक गया तो, ऐसा व्यवहार तो (अभी) है ही नहीं। यहाँ तो गुण-गुणी के भेद को भी निकाल दे। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन होगा — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह चार बोल हुए। आज पाँचवाँ है।

पाँचवें बोल में दृष्टान्त है। जैसे जल का, अग्नि जिसका निमित्त है... निमित्त है। उष्णता तो स्वयं से होती है, अग्नि निमित्त है। ऐसी उष्णता के साथ संयुक्तरूप.... उष्णता के साथ संयुक्तरूप जल तप्ततरूप-अवस्था से अनुभव करने पर (उष्णतरूप संयुक्तता....) है। पर्याय में अग्नि का निमित्त और उष्णता है, वह पर्याय है। आहाहा! तथापि एकान्त शीतलतरूप.... एकान्त शीतलता... क्या कहते हैं? एक स्वभाव जो शीतलता त्रिकाली, एकान्त एक स्वभाव शीतलतरूप.... आहाहा! जल का एकरूप शीतलता स्वभाव। आहाहा! ऐसा देखने से जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तपना उष्णता झूठा है। आहाहा! यह तो दृष्टान्त है।

सिद्धान्त इसी प्रकार आत्मा का,.... भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप त्रिकाली एक ज्ञानस्वभाव स्वरूप, एक ज्ञानस्वभावरूप ऐसे आत्मा का, आहाहा! कर्म जिसका निमित्त है.... निमित्त है, हाँ! ऐसे मोह के साथ संयुक्तरूप अवस्था से अनुभव करने पर (संयुक्तता भूतार्थ है-सत्यार्थ है,....) कर्म के निमित्त से... जैसे अग्नि का निमित्त और जल में उष्णता है। वैसे कर्म का निमित्त और मोह-राग-द्वेष मिथ्यात्वभाव पर्याय में है।

आहाहा! वह है व्यवहारनय का विषय है।

तथापि.... तो भी **जो स्वयं एकान्त....** क्या कहते हैं? उसमें आया था कि कर्म के निमित्त से मोह-राग-द्वेष हुआ, अब यहाँ तो निमित्त से दूर... आहाहा! स्वयं, स्वयं स्वभाव उसका है। वह तो कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में राग-द्वेष-मोह था, वह व्यवहार की पर्याय का विषय है। अब सम्यग्दर्शन पाने में विषय क्या? आहाहा! समझ में आया? **स्वयं एकान्त....** स्वयं स्वरूप, उसमें तो निमित्त की अपेक्षा होकर विकार था, पर्याय में कर्म के निमित्त की अपेक्षा से विकार था। उपादान अपने में था। अब यहाँ तो निमित्त नहीं, स्वयं; उस निमित्त के सामने स्वयं आया। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है प्रभु! आहा! जैसे एक कर्म के निमित्त से उपादान तो अपने में से हुआ, परन्तु उस पर्याय में जो मोह और राग-द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध आदि के भाव, उस पर्याय की अपेक्षा से — कर्म के निमित्त की अपेक्षा होकर अपने में है परन्तु वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

अतः स्वयं... उसमें निमित्त से विकार था — ऐसा कहा था। यहाँ स्वयं निमित्त के अतिरिक्त स्वयं सहज पारिणामिक ज्ञायकभाव... आहाहा! **स्वयं, एकान्त** — एक धर्म, जिसका सदा एक धर्म है। यह मोह और राग, द्वेष अनेक, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं हैं। आहाहा! **एकान्त स्वयं एक धर्म**, धर्म क्या? कि **बोधरूप (ज्ञानरूप) है ऐसे जीवस्वभाव....** आहाहा! स्वयं एक ज्ञानरूप जिसका स्वभाव है। त्रिकाली स्वयं ज्ञानरूप एक स्वभाव ऐसा भगवान। आहाहा! है? स्वयं एकान्त एक धर्म ऐसा ज्ञानरूप... है! भगवान तो स्वयं एक ज्ञानरूप आत्मा है। आहाहा!

ऐसे जीवस्वभाव के समीप जाकर.... एकरूप ज्ञानस्वभाव... ज्ञान की प्रधानता से कथन है। बाकी आनन्दस्वभाव, दर्शनस्वभाव, शान्तस्वभाव, स्वच्छतास्वभाव, प्रभुतास्वभाव.... उस एक ज्ञानस्वभाव में सर्व स्वभाव की एकता ज्ञान में (जानने में आती है)। समझ में आया? आहाहा! यह जीव का जो अनन्त स्वभाव है, उसमें ज्ञान प्रधानता से कथन है कि एकरूप जिसका ज्ञानस्वभाव, कायम ही एकरूप है, स्वयं है, वह किसी निमित्त से स्वयं पारिणामिक स्वभावभाव है — ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वयं एकान्त

एक धर्मरूपी ज्ञान, ज्ञानरूपी आत्मा है। ऐसे जीवस्वभाव के समीप जाकर। आहाहा! अर्थात् एकरूप ज्ञानस्वभाव के समीप अर्थात् सन्मुख जाकर अनुभव करने पर.... आहाहा! यह सम्यग्दर्शन। ऐसी चीज है। आहाहा!

आचार्य महाराज ने तो बहुत सरल करके टीका की है तो उसे (भी) कितने ही दुरूह / कठिन (कहते हैं)। रात्रि को कहा था न, दुरूह — ऐसा कहते हैं? ऐसा कि समयसार है तो सरल परन्तु विद्वानों ने उसकी टीका करके दुरूह कर दिया है (— ऐसा कहते हैं)। अरे प्रभु! तुम क्या कहते हो!

श्रोता : विद्वानों ने या आचार्यों ने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विद्वान अर्थात् आचार्य का मूल कहने का अर्थ यह है, है आया है समयसार में आया है। विद्यानन्दजी के (समयसार में ऐसा आया है) आहाहा! यहाँ दुरूह कर दिया है अमृतचन्द्राचार्य का। अरे भगवान! ऐसा नहीं कहते प्रभु! ऐसा, आहाहा! क्योंकि उसमें वह आया है न? 'सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं । व्यवहारदेसिदा' यह इन्हें सरल लगता है। व्यवहार का उपदेश देना यह सरल लगा, परन्तु टीकाकार ने कहा कि व्यवहार अर्थात् क्या? 'देसिदा' अर्थात् क्या? कि उस समय भी राग की अशुद्धता है और शुद्धता की कमी है, वह व्यवहार है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है — ऐसा टीकाकार ने दुरूह कर दिया है। टीकाकार ने स्पष्ट कर दिया है, दुरूह नहीं किया प्रभु! अरे! ऐसा नहीं है। बात उन्हें यह शब्द बाधक हैं और व्यवहारदेसिदा अर्थात् पहले तो व्यवहार का उपदेश देना (यह सरल पड़ते हैं) परन्तु यह उपदेश की व्याख्या यहाँ है ही नहीं। समझ में आया? है!

श्रोता : आचार्य का अर्थ ऐसा होता है ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य को अर्थ नहीं आया — ऐसा कहते हैं। टीकाकार को.... अरे प्रभु! अरे! १५ वीं गाथा अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं। अब अपदेस का अर्थ तो जयसेनाचार्य ने द्रव्यश्रुत किया है, उसे झूठा बतलाकर कहते हैं कि अपदेस अर्थात् ऐसा नहीं, अखण्ड प्रदेश ऐसा लेना। अरे प्रभु! यह क्या करता है भाई!

आहाहा! यह दुनिया तो चलेगी, दुनिया ऐसी है, परन्तु बापू! यह मार्ग (दुनिया से) विरुद्ध है। समझ में आया ?

अपदेससंत आता है न ? उसका अर्थ यह किया है। समयसार में आया, (यहाँ) अखण्ड, अखण्ड ऐसा लेना परन्तु यहाँ अपदेस का अर्थ जयसेनाचार्य ने द्रव्यश्रुत किया, उस अर्थात् द्रव्यश्रुत में भी ऐसा कहा है कि अबद्धस्पृष्ट देखना, वह जैन शासन है — ऐसा द्रव्यश्रुत में भी ऐसा कहा है और भावश्रुत तो वह है ही, आहाहा! भावश्रुत से जो अबद्धस्पृष्ट का अनुभव है, वह भावश्रुत तो जैन शासन है, वह शुद्ध उपयोग है, वह जैनधर्म है, वह जैन शासन है। आहाहा! १५ वीं गाथा में वह अर्थ बदल डाला। यहाँ कहते हैं कि ऐसा नहीं प्रभु! अपनी बात रखने को शास्त्र का अर्थ पलट देना, वह नहीं होता भाई! आचार्यों ने, सन्तों ने तो करुणा करके वह टीका बनायी है, तथापि वे तो कहते हैं कि प्रभु! यह टीका मैंने नहीं बनायी, हाँ! वह तो शब्दों से बन गयी है नाथ! आहाहा! परमाणु की पर्याय से टीका बन गयी है। अतः हमने टीका बनायी है — ऐसे मोह से मत नाचो। आहाहा!

श्रोता : अमृतचन्द्राचार्य को वह समझ में नहीं आया था ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया था (ऐसा नहीं है)। अरे भगवान! अमृतचन्द्राचार्य कौन हैं ? पंच परमेष्ठी परमेश्वर हैं। आहाहा! बापू! साधु कौन है ? आचार्य कौन है ? आहाहा!

कितने ही तो 'णमो लोए' में से 'लोए' निकाल देते हैं। पण्डितजी! णमो लोए सव्व साहूणं है न ? तो 'लोए' निकाल दो.... अभी वह तेरापंथी का तुलसी है न, वह कहता है 'लोए' निकाल दो। अरे प्रभु! यह तुम क्या करते हो ? यह तुम 'णमो लोए सव्व साहूणं' ऐसा न रखकर 'णमो सव्व साहूणं' बस! लोए नहीं... अरे प्रभु... !

श्रोता : लोए अर्थात् सब साधु ले लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब लेना, फिर वह तो दूसरा वह अर्थ करते हैं। सुशील (श्वेताम्बर साधु) लोए अर्थात् जितने साधु हैं वे सब ले लेना... अरे! यह अर्थ यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो अनन्त आनन्द जिसका अनुभव हुआ, तीन कषाय का अभाव है, जिन्हें छठा

सातवाँ गुणस्थान क्षण में अनेक बार आता है — ऐसे ही साधु को लिया है। अन्यमती की तो बात ही कहाँ है? जैन में जो द्रव्यलिंगी है, उसकी बात (भी) यहाँ नहीं है। समझ में आया? वह अक्षर-अक्षर सत्य है। अरे! धवल (धवला टीका) तो ऐसा कहता है कि णमो लोए सव्व (पद) अन्त दीपक है। अतः चारों में ले लेना। इसे विशेष कहते हैं, इससे धवल तो भी विशेष कहते हैं। त्रिकालवर्ती शब्द साथ में लेना, यह पूरा पाठ है।

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं
 णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं
 णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं
 णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उव्वझायाणं
 णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साधुणं

धवल में ऐसा पाठ करके णमोकार पूरा ऐसा बनाया। आहाहा! समझ में आया? परन्तु त्रिकालवर्ती निकाल दिया, पश्चात् णमो लोए सव्व साहुणं रखा और अन्त दीपकरूप से चारों में ले लेना — णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं..... ऐसे लेना। वस्तु का स्वरूप अनादि से ऐसी चीज है, उसमें गड़बड़ करे, वह नहीं चलता। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! कि जैसे वह कर्म का निमित्त है और उपादान तो अपना है, राग-द्वेष-मोह आदि; तो उस पर्याय में है परन्तु अब दृष्टि का विषय — जब सम्यग्दर्शन प्रगट करना है तो एक, एकान्त, एक अन्त, एक धर्म, एक स्वभाव बोध बीज, ज्ञानस्वरूप.... बीज का अर्थ यहाँ स्वरूप लेना। एक ज्ञानस्वरूप एक धर्म सामान्य, एक स्वरूप ऐसे जीव का स्वभाव, उसकी दृष्टि करने से, यह मोहादि का भाव अभूतार्थ है, झूठा है। आहाहा! समझ में आया? कहो, ज्ञानचन्दजी! है? तो भी स्वयं एकान्त अपने से अपना स्वभाव त्रिकाल, आहाहा! उसमें था कि कर्म के निमित्त से विकृत अवस्था — इतना निमित्त-निमित्त सम्बन्ध व्यवहारनय में बताया था। निश्चय में तो स्वयं ज्ञायक एकरूप स्वभाव, ज्ञान एकरूप स्वभाव, आनन्द एकरूप स्वभाव, शान्त एकरूप स्वभाव... शान्त अर्थात् स्थिरता चारित्र की (स्थिरता), वीतराग एकरूप स्वभाव

— ऐसे सर्व गुणों का एकरूप स्वभाव, ऐसे ज्ञान के एकरूप स्वभाव में सब साथ में ले लेना। आहाहा!

भगवान एक धर्म, एक स्वभाव....। ज्ञानरूप ऐसे जीव के स्वभाव की दृष्टि करने से, जो पर्यायबुद्धि है उसे छोड़कर, द्रव्यस्वभाव के समीप जाकर। आहाहा! इस प्रकार वहाँ जाकर अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है। यह तो अभी धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन के बिना... छहढाला में आता है... ज्ञान और चारित्र सब मिथ्या है। आहाहा! पहले से थोड़ा सुधार किया है। इसमें है? स्वयं एकान्त जो ज्ञानस्वरूप है — ऐसा जीवस्वभाव.... ज्ञानस्वभाव स्वयं है। आहाहा! उसमें तो कर्म के निमित्त से मोह-विकार, विकार कर्म से... निमित्त का अर्थ यह कि निमित्त से हुआ वह नहीं परन्तु उसके — निमित्त के लक्ष्य से हुआ तो निमित्त से हुआ — ऐसा कहा जाता है। वरना तो उस समय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष की उत्पत्ति का जन्मक्षण है। प्रवचनसार गाथा १०२ (में यह बात आती है) उस क्षण में, उस काल में मिथ्यात्व और राग-द्वेष की उत्पत्ति का-उत्पन्न होने का जन्मक्षण, उत्पत्ति का काल था, निमित्त भले हो, समझ में आया?

अतः पर्यायदृष्टि से देखने से मोह और राग-द्वेष पर्याय में है - ऐसा ज्ञान कराने को कहा परन्तु वह आदरणीय नहीं। आहाहा! एकरूप भगवान आत्मा स्वयं अपने से एक स्वभावरूप जीवस्वभाव के समीप जाने पर, उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर ज्ञायकभाव के — एक जीवस्वभाव के समीप (जाकर).... जो दूर था, पर्यायबुद्धि में एकरूप स्वभाव से दूर था। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। वह दूरी हटाकर, पर्यायबुद्धि छोड़कर... आहाहा! एक अन्त अर्थात् धर्म, ज्ञानस्वभावरूप जीव के स्वभाव की दृष्टि करने से, उसके समीप जाकर अनुभव करने से मोह आदि का भाव अभूतार्थ है। भूतार्थस्वभाव का अनुभव करने पर वह चीज अभूतार्थ है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा सम्यग्दर्शन इसने कुछ का कुछ कर डाला है। आहाहा! समझ में आया? एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ — भगवान ने जो कहा, परमार्थ का पंथ एक ही प्रकार है, यह है। आहाहा!

स्वयं ज्ञानस्वरूपी प्रभु, जीव का स्वभाव, उसमें कोई निमित्तपना है नहीं और वह क्षणिक है नहीं। आहाहा! त्रिकाली ज्ञानस्वभाव स्वरूप प्रभु की दृष्टि करने से, उसके समीप

जाकर अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है, अनुभूति होती है। तब रागादि को अभूतार्थ कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। ये पाँच बोल हो गये हैं।

भावार्थ : आत्मा पाँच प्रकार से अनेकरूप दिखाई देता है.... अनेकरूप दिखाई देता था, अब उसमें एकरूप दिखाना है। आहाहा! देखो टीकाकार कितनी स्पष्टता करते हैं। जयचन्द्र पण्डित! आहाहा! आत्मा....

श्रोता : टीका का अधिक स्पष्ट किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्होंने स्पष्ट किया है। लोगों को सादी भाषा में समझ में आवे — ऐसी बात कहते हैं। आहाहा! आत्मा एक वस्तु, पाँच प्रकार से अनेकरूप दिखाई देता था — बद्धस्पष्ट, अन्य-अन्य, नियत नहीं परन्तु अनियत, विशेष और रागसहित, मोहसहित — ऐसे अनेकरूप दिखता था। आहाहा!

(१) अनादि काल से कर्म पुद्गल के सम्बन्ध से बँधा हुआ.... यह पहला बोल लेते हैं। कर्मपुद्गल के स्पर्शवाला दिखाई देता है,... आहाहा! (२) कर्म के निमित्त से होनेवाली नर, नारक आदि पर्यायों में भिन्न-भिन्न स्वरूप से दिखाई देता है.... भगवान एकरूप स्वभाव होने पर भी कर्म के निमित्त से उसको नारकी आदि गति अनेकरूप दिखते थे।

(३) शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद.... प्रतिच्छेद घटते भी हैं और बढ़ते हैं। पर्याय में अगुरुलघु आदि एक समय की पर्याय में षट्गुण हानिवृद्धि आदि होती है, बढ़ती भी है यह वस्तु का स्वभाव है... पर्यायस्वभाव, हाँ! (वह) यह वस्तु-स्वभाव का अर्थ पर्यायस्वभाव वह नित्य-नियत एकरूप दिखाई नहीं देता,.... क्या कहा? पर्याय में हीनाधिक दशा होती है, वह वस्तु का स्वभाव है। स्वभाव अर्थात् पर्याय का ऐसा एक धर्म है। वस्तु का स्वभाव अर्थात् त्रिकाली की यहाँ बात नहीं है। आहाहा!

यह घटती-बढ़ती पर्याय अनन्त गुणी बढ़ जाये और अनन्त गुणी हीन हो जाये... आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान हो जाये, केवलज्ञान हो जाये, मति-श्रुत की पूर्णता हो जाये, अपूर्ण रहे इतने भेद, वह भी उसमें यह नित्य-नियत एकरूप दिखाई नहीं देता। आहाहा! नित्य-नियत स्वभाव एकरूप दिखाई नहीं देता, एक बात।

(४) वह दर्शन, ज्ञान आदि अनेक गुणों से विशेषरूप दिखाई देता है और.... (५) कर्म के निमित्त से होनेवाले मोह, राग, द्वेष आदि परिणामों से सहित वह सुखदुःखरूप दिखाई देता है ।.... सुख-दुःख की कल्पना से.... यह सुख आनन्द का नहीं लेना, यह सुख-दुःख कल्पना का लेना । स्वभाव का सुख, उस आनन्द की तो एकरूप दशा है । इस कल्पना के सुख-दुःख की अनेक दशा है । आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! सुखदुःखरूप दिखाई देता है....

यह सब अशुद्ध-द्रव्यार्थिकरूप.... ऐसा क्यों कहा ? है तो पर्याय परन्तु वह द्रव्य की पर्याय है — ऐसा गिनकर अशुद्ध-द्रव्यार्थिक कहा है । है ? अशुद्ध-द्रव्यार्थिकरूप व्यवहारनय का विषय है ।.... अशुद्ध-द्रव्यार्थिक कहो या पर्यायार्थिक कहो या व्यवहार कहो (सब एकार्थ है) । आहाहा ! अशुद्ध पहले क्यों लिया ? कि द्रव्य त्रिकाली होकर, पर्याय में अशुद्धता होती है, इसलिए अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा । वह कोई दूसरे में हुई है और दूसरे से हुई है — ऐसा नहीं है । आहाहा ! पहले के पण्डितों के कथन तो देखो ! वस्तु की जैसी स्पष्टता है, उस स्पष्टता को खोलकर रखते हैं । आहा !

श्रोता : अगुरुलघु माने क्या ?

समाधान : अगुरुलघु हो परन्तु पर्याय में हीनाधिक दशा है, वह भी है, अगुरुलघु है परन्तु पर्याय में हीनाधिकदशा होती है, वह भी लेना । आहाहा ! सब अशुद्ध द्रव्यार्थिक व्यवहारनय का विषय है ।

इस दृष्टि (अपेक्षा) से देखा जाये तो यह सब सत्यार्थ है ।.... पर्याय में वह भेद है । बद्धपना, निमित्तपना है, विकार है, अनेक पर्याय हीनाधिकरूप है, विशेषता है, व्यवहारनय से देखो तो वह है । परन्तु आत्मा का एक स्वभाव इस नय से ग्रहण नहीं होता,.... आहाहा ! यह सिद्धान्त है । भगवान आत्मा स्वयं एकरूप त्रिकाली स्वभाव, जिसमें निमित्त की अस्ति की तो अपेक्षा नहीं परन्तु निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं । क्षायिक समकित, क्षायिक केवलज्ञान में निमित्त के अभाव की अपेक्षा है । राग में निमित्त के सद्भाव की अपेक्षा है । इसमें (स्वभाव में) तो निमित्त के सद्भाव और निमित्त के अभाव की कोई अपेक्षा नहीं है — ऐसा स्वयं आत्मस्वभाव (है) । आहा ! आहाहा ! थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु बापू मार्ग यह है । आहाहा !

अरे! जन्म-मरण कर-करके चौरासी के अवतार किये, भाई! इसके दुःख की व्याख्या करते हुए परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तेरे नरक के क्षणमात्र के दुःख कहने में करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से नहीं कहे जा सकते, भाई! तूने इतने दुःख भोगे हैं, इस मिथ्यात्व के कारण (भोगे हैं)। आहाहा! समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन होने के बाद आर्तध्यान-रौद्रध्यान होता है परन्तु भविष्य की आयु का बन्ध अशुभभाव के काल में नहीं होता। आहाहा! क्या कहा? आत्मा का अनुभव— सम्यग्दर्शन होने के बाद आर्त-रौद्रध्यान आदि अशुद्धभाव आदि होता है परन्तु भविष्य की आयु जब बँधती हो, तब तो शुभभाव में ही आयु बँधेगी, अशुभभाव में आयु नहीं बँधेगी; अशुभभाव में दूसरे कर्म की प्रकृति बँधेगी। समझ में आया? समकित का इतना जोर है। आहाहा! समकित को रौद्रध्यान होता है, पाँचवें गुणस्थान तक रौद्रध्यान (होता है), छठवें गुणस्थान में आर्तध्यान, तथापि उस रौद्रध्यान के काल में भविष्य की आयु नहीं बँधेगी। आर्तध्यान के काल में भी भविष्य की आयु नहीं बँधेगी — ऐसा वस्तु का स्वरूप है।

श्रोता : आर्तध्यान-रौद्रध्यान करे और बँधे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आयु नहीं बँधती है — ऐसा कहा है। प्रकृति बँधती है, दूसरा बँधता है कहा न, यह तो कहा न, साथ में कहा न, आयु नहीं बँधती, भव नहीं बँधता, भविष्य का भव तो जब शुभभाव आयेगा तब बँधेगा। आहाहा! पण्डितजी! ऐसा है न? क्योंकि (कोई) समकित नारकी में है तो यहाँ आना है तो मनुष्यपने की ही आयु बँधेगी और मनुष्य है, उसकी आयु तो वैमानिक की ही आयु समकित को बँधेगी। आहाहा! समझ में आया? और जो वैमानिक समकित है, उसको मनुष्य की आयु बँधेगी, उसको — समकित को तिर्यच की आयु नहीं बँधेगी। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है।

श्रोता : उन्होंने शास्त्र लिखा है, अपने लिए सोच कर लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं; सब झूठ है, उन्होंने तो लिखा नहीं, वे तो वीतरागभाव में स्थित थे, सन्त तो वीतरागभाव में गुप्त थे। कहा नहीं? हम तो हमारे ज्ञानस्वरूप में गुप्त हैं। हमने टीका बनायी है — ऐसा नहीं है। यह तो भाषा की वर्गणा से (बन गयी है)। भाषा में स्व-परप्रकाशक शक्ति है, स्व-परप्रकाशक शक्ति.... स्व-पर

जानन शक्ति जीव में और शब्दों में स्व-पर कहने की शक्ति है। समझ में आया ? अतः भाई! उस वाणी से बन गया है, नाथ! मैंने बनाया — ऐसा मत मानो। आहाहा! यह वाणी मैं करता हूँ — ऐसा मत मानो, प्रभु! वाणी जड़ की है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, ऐसे ये पाँच प्रकार के अनेक प्रकार दिखते हैं, इससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! क्योंकि एकरूप जीव का स्वभाव जब दृष्टि में नहीं आता, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! गाथा तो बहुत सरस आयी है! १३, १४ (गाथा)! समझ में आया ? इस दृष्टि से देखा जाये तो यह सब सत्यार्थ है।... पर्याय से है। परन्तु भगवान आत्मा का एक स्वभाव इस नय से ग्रहण नहीं होता,.... वह त्रिकाली ज्ञायक एक स्वभाव इस पर्यायनय से ग्रहण नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ? अनेकपने को जानने की जो दृष्टि है, वह व्यवहार है और अनेकपने की दृष्टि से एक स्वभाव पकड़ में नहीं आता। आहाहा! क्या कहते हैं ? (श्रोता : जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक संसार में भटकेगा) पूज्य गुरुदेवश्री : करे, बाँधे भटकता है संसार में, क्या ? नरक और निगोद में जायेगा परन्तु संस्कार डाला होगा तो सम्यग्दर्शन भले न हो, परन्तु संस्कार डाला होगा कि मैं तो राग से भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, भिन्न हूँ — ऐसे संस्कार (डाले होंगे) तो वह भी नरक-निगोद में नहीं जायेगा। समझ में आया ? जिसे सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि कहा गया है... मोक्षमार्गप्रकाशक ! सातवाँ अध्याय है। अन्दर में दृढ़तर संस्कार डाले हैं कि मैं इस राग से भिन्न हूँ, पुण्य से भिन्न हूँ, पर्याय जितना भी मैं नहीं; मैं तो पूर्ण ज्ञायकस्वभाव हूँ — ऐसा दृढ़ संस्कार डाला है, भले सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा!

जैसे, कोरा सकोरा (मिट्टी का बर्तन) होता है न सकोरा ? आप क्या कहते हैं ? सकोरा, पानी डालते-डालते पी जाता है। बाद में विशेष पानी पड़ता है, (तब) बाहर दिखता है। ऐसे पहले अन्दर ऐसे दृढ़ संस्कार डालना कि राग से और विकल्प से मेरी चीज जानने में नहीं आती, मैं तो मेरे स्वभाव से जानूँ — ऐसा संस्कार डालते... डालते... डालते जब विशेष हो गया, तब अनुभव हो जायेगा। समझ में आया ? आहाहा! यह चीज है भैया! दुनिया माने न माने, मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया ?

एक स्वभाव इस नय से.... इस नय से क्या ? अनेकपने के पाँच बोल कहे, उस

नय से एक स्वभाव दृष्टि में नहीं आ सकता। आहाहा! और एक स्वभाव को जाने बिना.... एकरूप कायमी स्वयं शुद्ध परमस्वभावभाव पारिणामिकस्वभावभाव — ऐसे एक स्वभाव को जाने बिना यथार्थ आत्मा को कैसे जाना जा सकता है?... वास्तविक एकरूप त्रिकालस्वभाव को जाने बिना वास्तविक आत्मा को कैसे जाना जाता है? आहाहा! भाषा जरा सरल है। वस्तु कठिन है परन्तु भाषा सरल और समझ में आये ऐसी चीज है। समझ में आया?

इसलिए दूसरे नय को.... क्यों कहा? कि पाँच भेद — बद्ध, अन्य-अन्य, अनियत, विशेष, रागादि सम्बन्धवाला देखने से एकरूप स्वभाव देखने में नहीं आता। आहाहा! व्यवहार में राग आता है, उसको देखने से एकरूप स्वभाव देखने में नहीं आता। आहाहा! व्यवहार है न? दया, दान, व्रत, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का विकल्प (है न?) उसके लक्ष्य से एकरूप स्वभाव जानने में नहीं आता। आहाहा! उससे एकरूप स्वभाव जानने में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? समझ में आवे ऐसा है प्रभु! तेरे घर की बात, नाथ! तुझे न समझ में आये ऐसा कैसे? आहाहा! है? प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं नाथ! अरे प्रभु! तुझे पता नहीं है। तेरी प्रभुता ऐसी है कि अन्दर में संस्कार डालने से अनुभव में आयेगा ही आयेगा। समझ में आया? आहाहा! यह पामरता टूट जायेगी, आहा! एकरूप स्वभाव... एकरूप स्वभाव... एकरूप स्वभाव.... आहाहा! ऐसा अनुभव करने पर सम्यक्स्वभाव जाना जाता है। टीका का अर्थ गम्भीर लगे, इसलिए सादी भाषा में अर्थ किया है।

इसलिए दूसरे नय को — उसके प्रतिपक्षी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को.... वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक था। अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहो, व्यवहार कहो या पर्यायनय कहो, तीनों एक हैं। अब यहाँ शुद्ध द्रव्यार्थिक लेना है। आहाहा! भाई! यह तो हित की बात है, प्रभु! यह तो धर्म-सम्यक् कैसे प्राप्त हो? इसकी बात है। आहाहा! यह कोई साधारण बात नहीं। आहाहा! अनन्त काल का जन्म-मरण, उसके भाव का नाश करने का यह उपाय है। आहाहा!

शुद्ध द्रव्यार्थिक शुद्ध द्रव्यस्वरूप, त्रिकाली शुद्ध द्रव्य, अर्थी अर्थात् प्रयोजन। जिस नय का शुद्ध त्रिकाली द्रव्य प्रयोजन (है); शुद्ध द्रव्यार्थिक — शुद्ध द्रव्य अर्थी, जिसका

प्रयोजन — त्रिकाल का — ऐसे नय से। आहा! **ग्रहण करके, एक असाधारण....** एक असाधारण, दूसरी चीज में ऐसा भाव एकरूप है ही नहीं पर्याय में, ऐसा। **ज्ञायकमात्र आत्मा का भाव लेकर,....** एक ज्ञायकमात्र भाव... आहाहा! मुद्दे की रकम है, मुद्दे की क्यों कहा? वह पाँच लाख दिये हों और आठ आने की ब्याज से, पहले तो आठ आना सैकड़ ब्याज था न? आठ आना... अब तो टका हो गया है। तो पाँच लाख दिये हों तो आठ आना ब्याज पच्चीस वर्ष तक लिया। बाद में कहे भाई! ब्याज तो लिया परन्तु अब (मूल) पैसा लाओ, मुद्दे की रकम लाओ, ब्याज नहीं अब। (वह कहे कि) रकम नहीं है... आहाहा! ऐसे यहाँ कहते हैं, पुण्य-पाप से स्वर्ग-नरक आदि मिला है, वह सब तो बाहर का ब्याज है, मूल रकम लाओ।

यह त्रिकाली स्वभाव जो मूल रकम है... आहाहा! जिसकी उत्पत्ति नहीं, जिसका नाश नहीं, जिसमें अपूर्णता नहीं, जिसमें आवरण नहीं, जिसमें अशुद्धता नहीं... आहाहा! ऐसा **ग्रहण करके, एक असाधारण ज्ञायकमात्र आत्मा का भाव लेकर,....** आहाहा! **उसे शुद्धनय की दृष्टि से....** जो ज्ञान का अंश त्रिकाल को पकड़ता है, वह शुद्धनय, उससे **सर्व परद्रव्यों से भिन्न,....** अबद्धस्पष्ट है और इसी से लिया है परद्रव्यों से भिन्न, **सर्व पर्यायों में एकाकार,....** नारकी आदि यह अन्य-अन्य नहीं... **हानिवृद्धि से रहित,....** अनियत नहीं नियत। **विशेषों से रहित...** गुणभेद से-विशेष से रहित और **नैमित्तिक भावों से रहित....** निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुए राग-द्वेष आदि इन नैमित्तिक भावों से रहित.... कर्म तो निमित्त है, पर्याय में विकृत अवस्था नैमित्तिक अपने कारण से हुई है। आहाहा! समझ में आया?

अभी यह कर्म की पुकार बहुत है सबको, बस कर्म से होता है, कर्म से होता है, कर्म से होता है, किन्तु पर की — राग की पर्याय कर्म — परद्रव्य से कैसे हुई? परद्रव्य तो उसे स्पर्श नहीं करता न? और राग है, वह कर्म द्रव्य के उदय को स्पर्श ही नहीं करता न और दो द्रव्य भिन्न हैं... 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया....' कर्म से नहीं; 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया...' आहाहा! अपनी चीज क्या है? उसमें भी नहीं आया? 'अब हम निज घर कबहुँ न आये, पर घर भ्रमत....' अपने उल्टे पुरुषार्थ से परघर भ्रमत — राग और पुण्य व अनेकता को अपना मानकर मैं चार गति में भटका। आहाहा!

बहिन के वचन में (बहिनश्री के वचनामृत) तो ऐसा आया है कि सम्यग्दर्शन हुआ है, स्वदेश का भान हुआ है। चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य में... अरे...रे! राग में आया (तो) हम परदेश में आ गये। आहाहा! बहिन के वचनामृत में है। अरे...! दया, दान, व्रत आदि विकल्प में आये, हम परदेश में आ गये, उसमें हमारा देश नहीं है। आहाहा! हमारे स्वदेश में तो आनन्द, ज्ञान और शान्ति पड़ी है, वह हमारा परिवार है। आहाहा! बातें बहुत कठिन, भाई! आहाहा! है न वह, उसमें है या नहीं? कितने में है? ४०१, ४०१ है — ज्ञानी का परिणामन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है, ज्ञानी निजस्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसते हैं। आहाहा! मैं मेरे घर में परिपूर्ण कैसे बैठ जाऊँ! आहाहा! समकित्ती को तो अपने स्वरूप में पूर्ण प्रेम करके बैठ जाऊँ — ऐसी भावना है। आहाहा! यह विभावभाव हमारा देश नहीं, यह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी समकित्ती को उठता है परन्तु वह हमारा देश नहीं। आहाहा!

कहो, जयपुर छोड़कर विलायत.... क्या कहते हैं? अमेरिका-अमेरिका, विलायत है। यह तो दृष्टान्त है। आहाहा! यहाँ तो प्रभु! आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी जहाँ दृष्टि हुई और उसका - स्वभाव का भान और अनुभव हुआ, तत्पश्चात् विकल्प आया तो कहता है कि अरे...रे! हम तो परदेश में आ गये, उसमें हमारा कोई परिवार नहीं, वहाँ आ गये। आहाहा! युगलजी! यहाँ तो व्यवहार आवे तो प्रसन्न होता है। आहाहा! इस परदेश में आकर हम कहाँ पहुँचे! आहाहा! हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। शुद्ध चैतन्य हमारा पवित्र देश है, उसमें हम रहते हैं और यह आ गया राग.... हम परदेश में कहाँ आ गये? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता, शुभभाव अच्छा नहीं लगता। ए... रंगुलालजी! आहाहा! उसके बदले अभी तो स्त्री-पुत्र और पैसा-प्रतिष्ठा ठीक लगती है। आहाहा! मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

भाई! तीन लोक के नाथ केवली परमात्मा की यह वाणी है। उसका यह स्वरूप है। प्रभु! आहाहा! यहाँ हमारा कोई नहीं। अरे...रे! विकल्प उठा, वह भी हमारा नहीं। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्य आदि अनन्त गुणोंरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। आहाहा! रतनचन्दजी! अब हम उस स्वरूप-स्वदेश की ओर जा रहे हैं। आहाहा! स्वरूप जो ज्ञायक और आनन्दस्वरूप एकरूप है, वहाँ हम जा रहे हैं।

हमें शीघ्रता से अपने मूल वतन में जाकर, शीघ्रता से अपना मूल वतन जो स्वदेश-आनन्द ज्ञान आदि.... आहाहा! वहाँ आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं। आहाहा! पुस्तक (बहिनश्री के वचनामृत) प्रकाशित हो गया तो बहुत महिमा आती है, लोग कहते हैं... ओहोहो! आया तुम्हारे आया न हिन्दी में, आया है न पत्र आया है। ऐसे एक संग्रह हो गया है। आहा! यहाँ कहते हैं।

श्रोता : आत्मधर्म में दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा दिया है।

ऐसा देखा जाये तो सर्व (पाँच) भावों से जो अनेक प्रकारता है, वह **अभूतार्थ है — असत्यार्थ है।...** स्वभाव की एकता में दृष्टि करने से, स्वभाव की एकरूप स्वभावसमीप की दृष्टि करने से, अनुभव करने से, ये पाँच प्रकार हैं — अनेक प्रकार हैं, ये झूठे दिखते हैं, उसमें है नहीं। सामान्य में विशेष है नहीं, सामान्य में अनेकता है नहीं, सामान्य में अनियतता है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। है? ऐसा प्रभु है भाई! भाई! तेरे घर की बात है न प्रभु! आहा! कठिन लगे, इसलिए दूसरा रास्ता लेना — ऐसा कुछ है? है? आहा! मार्ग तो यह है। आहाहा!

यहाँ यह समझना चाहिए कि वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है,... वस्तु का स्वरूप तो अनन्त धर्मस्वरूप, अनन्त गुणस्वरूप है, वह स्याद्वाद से यथार्थ सिद्ध होता है।..... देखा जाता है। अपेक्षा से ऐसा सब निर्णय होता है। आत्मा भी अनन्त धर्मवाला है। उसके कुछ धर्म तो स्वाभाविक हैं.... ज्ञान-दर्शन आदि। कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं।... कुछ पुद्गल की अपेक्षा से-संयोग से हुए हैं राग-द्वेष आदि। ज्ञानदर्शन, आनन्द स्वाभाविक हैं और राग आदि पुद्गल के निमित्त से हुए विभाविक हैं। कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं। आहाहा! जो कर्म के संयोग से होते हैं, उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है..... कर्म के निमित्त से जो राग आदि आता है, वह तो संसार की प्रवृत्ति है। (राग) चाहे तो शुभ हो या चाहे तो अशुभ हो। आहाहा!

समयसार नाटक में तो मोक्ष अधिकार में ४० वाँ बोल लिया है... समझ में आया? कि मुनि है सच्चे भावलिंगी (मुनि हैं) जिनको पूर्णानन्द के नाथ का पता लगकर ऐसी

स्थिरता जम गयी है, वीतरागता... वीतरागता... वीतरागता... वीतरागता जम गयी है।
 उनको महाव्रत का विकल्प उत्पन्न होता है.... समयसार नाटक में कहा है कि वह जगपंथ
 है। है यहाँ समयसार नाटक ? है, मोक्ष अधिकार है न ? उसमें ४० वाँ बोल है, मोक्ष (द्वार)
 है न ? मोक्ष (द्वार) है ? यह आया देखो 'ता कारण जगपंथ ऐ...' आहाहा! मुनिराज
 आत्मा के आनन्द के वेदनवाले, शुद्धचैतन्यघन में रमणता करनेवाले, उसको भी जो
 विकल्प आता है, पंच महाव्रत का अट्ठाईस मूलगुण का (विकल्प आता है) **ता कारण
 जगपंथ....** वह जगपंथ है, इतना! आहाहा! 'उत् शिवमारग जोय' राग से भिन्न होकर
 अन्दर स्वरूप में स्थिरता, वह शिवमारग जोय। 'प्रमादी जग को ढूँके' अरे...रे...!
 मुनि भी प्रमाद में आये तो जग की दशा हुई - राग की-संसार... आहाहा! ऐसी बात है
 प्रभु! 'और अप्रमादी शिव ओर' स्वरूप में अप्रमाद होकर रहते हैं, वे तो शिवलोक में-
 मोक्ष के पंथ में चलते हैं। आहाहा! सच्चे भावलिंगी मुनि, जिसका भावलिंग जिनकी
 मोहर-छाप है, ज्ञायक प्रचुर स्वसंवेदन! ज्ञायक का प्रचुर स्वसंवेदन जिसकी मोहर-छाप
 है - ऐसे भावलिंगी सन्त। आहाहा! उनको भी विकल्प आता है तो कहते हैं, वह तो
 संसार है, इतना संसार - जगपंथ है। आहाहा! अज्ञानी की तो क्या बात करना ? आहाहा!
 क्योंकि राग उदयभाव है, उदयभाव संसार है। आहाहा! समझ में आया ? **उससे आत्मा
 की सांसारिक प्रवृत्ति होती है।** राग आदि से तो संसार की प्रवृत्ति होती है, देखो!
और तत्सम्बन्धी जो सुखदुःखादि होते हैं, उन्हें भोगता है।... अज्ञानी... आहाहा!
 यह, इस आत्मा की अनादिकालीन अज्ञान से पर्यायबुद्धि है;..... अनेकपने की,
 रागादि की पर्याय और भेद को देखना अनादि की पर्यायबुद्धि है। आहाहा! भगवान एक
 समय की पर्याय के समीप प्रभु विराजमान है। आहाहा! अनेक पर्याय, जो पर्याय एक
 समय की है, उस पर्याय के समीप अन्तर में प्रभु विराजमान है, पूर्णानन्द का नाथ।
 समझ में आया ? आहा!

यह आत्मा अनादिकाल से पर्यायबुद्धि है। **उसे अनादि-अनन्त एक आत्मा
 का ज्ञान नहीं है।...** साथ में जो भिन्न ध्रुव पड़ा है, अनादि-अनन्त (पड़ा है),
 उसका ज्ञान नहीं है, पर्याय का ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया ? एक क्षण की

पर्याय उत्पन्न हुई, दूसरे क्षण में नाश होती है, परन्तु उसमें भगवान एक अनादि-अनन्त ध्रुव पड़ा है। आहाहा! उसका तो ज्ञान है नहीं उस तरफ तो झुके नहीं... आहाहा! वह आत्मा का ज्ञान नहीं है।

इसे बतानेवाला सर्वज्ञ का आगम है।.... इस सर्वज्ञ के आगम के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं तीन काल में नहीं है। समझ में आया ?

श्रोता : सभी धर्मवाले अपने गुरु को सर्वज्ञ मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने कुछ भी, सर्वज्ञ है ही नहीं। अज्ञानी स्वयं अपने को चाहे जो माने। सर्वज्ञ तो एक जैनदर्शन में क्योंकि आत्मा सर्वज्ञस्वभावी त्रिकाल है। भगवान आत्मा त्रिकाल सर्वज्ञस्वभावी है — ऐसा कहनेवाले तो सर्वज्ञ परमात्मा हैं और वह सर्वज्ञ स्वभाव है, त्रिकाली भगवान। उसके अवलम्बन से पर्याय में सर्वज्ञपना होता है। जिसका सर्वज्ञस्वभाव आत्मा में है — ऐसा मानता नहीं, उसे सर्वज्ञ पर्याय कभी नहीं होती। आहाहा!

श्रोता : आत्मा को तो मानता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, आत्मा को क्या माने ? सब बातें करते हैं। आत्मा अर्थात् क्या, प्रभु ? सर्वज्ञ... दूसरी सादी भाषा में कहें तो 'ज्ञ' स्वभावी और 'ज्ञ' स्वभावी में सर्व लगा दिया तो सर्वज्ञस्वभावी क्योंकि वह सर्वज्ञस्वभाव उसका गुण है, उसकी शक्ति है। आहाहा! और वह सर्वज्ञस्वभावी एकरूप प्रभु की दृष्टि करने से और उसमें स्थिर होने से सर्वज्ञ की पर्याय प्रगट पर्याय में होती है। सर्वज्ञ में से प्रवाह आता है। आहाहा! पूर्व की पर्याय में से मोक्ष हो — ऐसा कहना भी व्यवहार है। बाकी तो सर्वज्ञस्वभाव है, उसमें से सर्वज्ञ पर्याय आती है। आहाहा! समझ में आया ?

उसमें शुद्धद्रव्यार्थिकनय से यह बताया है कि आत्मा का एक असाधारण चैतन्यभाव है.... त्रिकाली एक असाधारण, दूसरा गुण भी ऐसा नहीं... ज्ञानस्वभाव जैसा। दूसरे गुण भी अपने को नहीं जानते; ज्ञान अपने को जानता है और दूसरे गुण को जानता है और पर को जाननेवाला असाधारण एक ज्ञायकस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा उपदेश ! है ? आहाहा! ज्ञान है, **असाधारण चैतन्यमात्र जो कि अखण्ड....** है, प्रभु तो — द्रव्यस्वभाव तो अखण्ड है, जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं

है। नित्य.... है, अनित्य नहीं। और अनादिनिधन है.... अनादिनिधन.... 'अ' आदि — अनिधन (अर्थात्) आदि नहीं और अन्त नहीं — ऐसी चीज ध्रुव नित्यानन्द प्रभु! आहाहा! उसे जानने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है। ऐसे भगवान् त्रिकाली ज्ञायक को जानने से और अनुभव करने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात छूट जाता है, तभी सम्यग्दृष्टि होता है। आहाहा!

विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)